International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 2, Issue 6, November 2015 |

समकालीन हिंदी साहित्य : किसान विमर्श

डॉ0 अशोक कुमार शर्मा

व्याख्याता, हिन्दी,राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,गंगापुर सिटी

सारांश:-

धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता। वही उसका सब कुछ है। दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है। किसान के लिए खेती कोई व्यापार-व्यवसाय भी नहीं है, बल्कि यह तो उसकी रोजमर्रा की जिन्दगी का एक बड़ा हिस्सा है, किसान अपने खेतों से सर्वाधिक लगाव रखता है और वह किसी भी कीमत पर अपने खेत छोड़ने को तैयार नहीं होता। लाख प्रलोभन भी उसे नहीं डिगा पाते, किसान के लिए उसका खेत ही सब कुछ होता है, सब कुछ खोकर भी वह "किसान" बना रहना चाहता है। वह दो बीघे की जायदाद का मालिक कहलाना ज्यादा पसंद करता है। और जब- जब उसकी इस धरोहर को छीनने की कोशिश की गई है, तब-तब उसने उग्र रुप धारण किया है और आंदोलन के रास्ते पर उठ खड़ा हुआ है। प्रमाण स्वरुप अंग्रेजों के विरुद्ध हुए किसानों के आंदोलन देखे जा सकते है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं किसान जीवन की विधिक छवियों का प्रमाणिक अंकन समय-समय पर हुआ है। प्रेमचंद ने अपने रचनाओं माध्यम से किसान को साहित्य में एक मुकम्मल जगह प्रदान की। उन्होंने किसान जीवन को बहुत करीब से देखा और फिर उसको अपने लेखन का केन्द्र बनाया। प्रेमचंद के पश्चात् ग्रामीण जीवन पर बहुत लेखकों ने उपन्यास और कहानियाँ लिखी जो उल्लेखनीय रही है। साथ ही हिन्दी कविता में भी किसान जीवन की विविध छवियां अंकित है। लेकिन इधर के वर्षो में परिस्थितियां बदली है।

21वीं सदी की विभिन्न चुनौतियों ने किसानों के समक्ष बहुत सारे सवाल खड़े कर दिए। वैश्वीकरण और भू-मण्डलीयकरण के प्रभाव ने अन्नदाताओं को आत्महत्या के लिए मजबूर कर दिया। लेखन की दुनिया में भी आज किसान धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है। ऐसे भीषण समय में प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानों और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ति मिली है, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्प संख्यकों के नये आयाम और जुड़ गए।

शब्द कूंजी:-

औद्योगीकरण, किसान विमर्श मीडिया, विज्ञापन, बाजार, समाचार-पत्र।

परिचय:-

भारतीय जनता इतनी अज्ञान, इतनी भोली-भाली थी कि शासन प्रणाली के दो मुंहे कष्ट को वह समझ नहीं पा रही थी और सामाजिक बुराइयों तथा विदेशी शासक के दो पाटों के बीच बुरी तरह पिसती जा रही थी। भारत जैसे महान देश की सबसे बड़ी विडंबना भी थी कि देश की 80 प्रतिशत जनता, जिसने देश को देश बनायाथा, शासन प्राणाली के द्वारा सबसे ज्यादा उपेक्षा का शिकार हो रही थी। वह किसान जो अपने खून-पसीने से भूमि को सींचता था, रोपता था और पूरे देश की जनता के लिए अनाज पैदा करता था, अंग्रेजों की भूमि व्यवस्था के कारण वही अब नीलामी और बेदखली की ठोकरें खा रहा था, भूमिहीन हो रहा था। किंतु अनेक ठोकरें खाकर भी वह किसान और गृहस्थ होने के मरजाद रूपी मोह को त्याग नहीं पा रहा था। किसानी की मरजाद एक ऐसी वस्तु है, गृहस्थ कहलाने का गौरव एक ऐसा मोह है जिसे किसान अपनी इच्छा से चाहकर भी छोड़ नहीं पाता।

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 2, Issue 6, November 2015 |

प्रेमचंद गरीबों की इस भावना का वर्णन करते हुए कहते हैं- "कृषि प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है। गृहस्थ कहलाना गर्व की बात है। किसान गृहस्थी करता है।[1] मान-प्रतिष्ठा का मोह औरों की भांति उसे घेरे रहता है। वह गृहस्थ रहकर जीना और गृहस्थी ही में मरना भी चाहता है। उसका बाल-बाल कर्ज से बंधा हो, लेकिन द्वार पर दो-चार बैल बांधकर वह अपने को धन्य समझता है। उसे साल में 360 दिन आधे पेट खाकर रहना पड़े, पुआल में घुसकर रातें काटनी पड़े, बेबसी से जीना और बेबसी से मरना पड़े, कोई चिंता नहीं, वह गृहस्थ तो है। यह गर्व उसकी सारी दुर्गति की पुरौती कर देता है।" प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है। हिन्दी उपन्यासकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर विभिन्न प्रकार के उपन्यासों की रचना की। हिन्दी साहित्य के उपन्यासकारों ने सामाजिक और आंचलिक उपन्यासों के वर्ण्य विषय के रूप में किसान जीवन को प्राथमिकता दी[2] तथा भारतीय किसान जीवन की विभिन्न प्रकार परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन का सर्वप्रथम वर्णन शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया में हुआ है जिसमें भोजपुर जनपद के अंचल का चित्रण प्राप्त होता है। इसके बाद निराला के बिल्लेसुर बकरिहा' में किसान जीवन[3] का चित्रण मिलता है।

विचार-विमर्श:-

निराला के बाद मुंशी प्रेमचन्द ने तो किसानों को ऐसा चित्रण अपने उपन्यास 'गोदान' में इस प्रकार किया है जो आज भी प्रासंगिक है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के रंगभूमि तथा कर्मभूमि में भी किसान जीवन को देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन के 'बलचनामा', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि, फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल', 'परती परिकथा, रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी', हिमांशु श्रीवास्तव का नदी फिर बह चली, विवेकी राय के 'बबूल', 'लोक ऋण' तथा 'सोनामाटी', जगदीश चन्द्र के 'धरती धन न अपना', भैरव प्रसाद गुप्त के गंगा मैया, संजीव के 'फांस', राजकुमार राकेश के 'कंदील, सुनी चतुर्वेदी का 'काली चाट' तथा पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' इत्यादि उपन्यासों ने किसान विमर्श का वर्णन किया है। [4]

भारतीय किसान आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। जमींदार, साहूकार, महाजन तथा सरकारी तन्त्र सभी किसान को लूट रहे हैं। किसान दरिद्रता, शोषण तथा निरक्षरता आदि का शिकार हो गया है। हमारे समाज में आर्थिक असमानता किसानों की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण है। इसके फलस्वरूप जो जमींदार अच्छी जमीनों के मालिक थे वो ओर अधिक जमीनें खरीद गए तथा छोटी जोत के किसान अपनी जमीन को बेचने के लिए मजबूर हैं।[5] 'गोदान' उपन्यास में भोला होरी से कहता है- "कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। हम में आदमीयत कहां? आदमी तो वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं।" जमींदारों के शोषण ने किसानों की स्थिति को दयनीय बना दिया। 'बलचनामा' उपन्यास में बलचनामा के पिता की मृत्यु होने पर उसके क्रियाक्रम के लिए उनके पास पैसे नहीं थे,[6] उस क्रियाक्रम कोऋण के पैसों से ही करवाना पड़ता है। 'प्रेमाश्रम उपन्यास में जमींदार परिवार की एक सदरया विद्या कहती है- "उस समय जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला, तब हम लोग इलाके पर गये... उन दिनों की बाबू जी की निर्दयता देखकर तेरे रोयें खड़े हो जाते थे। बाबू जी को उड़ाने के लिए रुपये न मिलते तो वह चिढ़कर आसामियों पर गुस्सा उतारते। सौ-सौ मनुष्यों को एक पांत में खड़ा करके इंटरों से मारने लगते। बेचारे तड़प-तड़प कर रह जाते, पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी।"

'गोदान' के जमींदार राय साहब को रामलीला कराने के लिए गांव से पांच सौ रुपये की अपेक्षा है। किसानों की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए 'फांस' उपन्यास में संजीव कहते हैं- "महंगे बीजों, खादों और कीटनाशकों की वजह से ज्यादातर किसानों को कर्ज लेना पड़ता है। सरकारी बैंकों में खसरा-खतौनी, नकल दुरुस्ती समेत कई लफड़े कर्ज की राशि भी कम है। फलतः ज्यादातर किसान वहां जाने से घबराते हैं और उन्हें ऋण ऐजेंसियों और गांव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है।" [7]

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 2, Issue 6, November 2015 |

'कंदील' उपन्यास में रणसिंह अपनी पारिवारिक स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है- "दोनों छोहरों के ब्याह किये तो घणा पैसा लगा। अब मेरी गांठ में तो था नई बंक के जट की चिरौरी विनती की तब जाके ईक और करज खोपड़े पर धर ल्या। खेत-खडे के इलावा घर में आमदन दूसरी तो है नई गरचे कहीं खुदा ना खासता फसल टूट-फूट ले तो ईब समझो रोटी के लाले आ जाने वाले हुए।"

परिणाम :-

पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में सूदखोरो की शोषण नीति का बखूबी वर्णन किया है- "रामप्रसाद का पिता जब मरा, तो जमीन के साथ बैंक का सोसाइटी का, सूदखोरों का कर्ज भी छोड़ गया था। इलाके में सूदखोरों का सूद बड़े विचित्र तरीके से चलता था, जैसे आपने यदि मुझसे अभी इस महीने की दस तारीख को एक हजार रुपये लिए हैं, तो आप अगले महीने की दस तारीख,[8] मतलब ठीक एक महीने बाद दो हजार वापस करेंगे या यह कि आप मुझसे दस हजार रुपये अभी ले रहे हैं, जिनको आप छह माह बाद एक हजार रुपये प्रति महीने के हिसाब से ब्याज देकर लौटाने की बात कर रहे हैं, तो आपको अभी दस हजार नहीं मिलेंगे, आप दस हजार पर अंगूठा लगाएंगे और मिलेंगे आपको केवल चार हजार, छह हजार तो ब्याज के कट गए न भाई। अब छह महीने बाद दस हजार ही लौटाना है आपको यह सूदखोर अपने कर्ज की वसूली अपने ही तरीके से करते हैं। यह वसूल सकते हैं, इसलिए देते हैं। किसान की किस्मत तो कर्जे से बंधी ही है उसे तो लेना ही है।"

किसान का जीवन अभावों की कड़ी के समान है। नागार्जुन का बलचनमा दरिद्रता के कारण दास होकर जीवन व्यतीत करने को विवश हो जाता है। विलसी जीवन व्यतीत करने वाले जमीदारों का वह शिकार होता है और जमींदारों के यहां जूठन से तथा उनकी गलियों से अपना पेट भरना पड़ता है।[9] किसान के घर में दवाई के लिए पैसे नहीं होते, इस प्रसंग का वर्णन 'रेणू' के मैला में देखा जा सकता है- मैला आंचल का डॉक्टर जब पास के एक गांव में मरीज को देखने जाता है और जब इंजेक्शन लगाने की तैयारी करता है तब लड़की का बाप पूछ ही बैठता है- "डॉक्टर साहब यह जो जंकसैन दे रहे हैं, इसका कितना होगा?" इस प्रकार किसान की स्थिति अत्यन्त दयनीय है एक तरफ तो फसल उपजाने के लिए उसे कर्ज लेना पड़ता है[10] तथा दूसरी तरफ पहले वाला ऋण न चुका पाने के कारण जमींदार तथा साहूकार उसकी फसल को खलिहान से ही ले जाते हैं। हिन्दी उपन्यासों में किसान विमर्श के सामाजिक चित्रण के अन्तर्गत- जातिवाद, झगड़े एवं मन-मुटाव, अनैतिकसम्बन्ध, कृषक का सभाव के विभिन्न रीति-रिवाजों का अनुसरण करना, संयुक्त परिवार के विघटन, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, दहेज-प्रथा, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह इत्यादि प्रसंगों को देखा जा सकता है। जातिवाद को कृषक जीवन में रेणु के 'मैला आंचल' में देख सकते हैं।[11]

'मैला आंचल' में राजपूत, कायस्त, ब्राह्मण, यादव इत्यादि जातियों के लोग हैं। विभिन्न टोलियाँ-पोलिया टोली, कुशवाहा टोली, छत्री टोली और रैदास टोली। विभिन्न जातियां तो हैं ही उनमें आपसी भेदभाव भी है। सिपहैया टोली वाली भोज के समय गवाले के साथ पंगत में बैठने के लिए तैयार नहीं है। लोगों के मन में जातिवाद इतना घर कर गया कि डॉक्टर जब गांव में पहली बार आते हैं तो सबसे पहले लोग उनकी जात को जानना चाहते हैं। डॉक्टर ठीक ही सोचते हैं- "जाती बहुत बड़ी चीज है। जात-पांत नहीं मानने वालों की भी जाति होती है। सिर्फ हिन्दू कहने से पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण है... कौन ब्राह्मण? गौत्र क्या है?.. शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना, लेकिन गांव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता।" जातिवाद के रोग से नागार्जुन का बलचनमा भी ग्रस्त है। बलचनामा का बूढ़ा वैद्य इसके कारण ही छोटी जातिवालों को यहां नहीं जाता है। किसानों का अंधविश्वासी होना भी किसान जीवन की प्रमुख समस्या है। 'बलचनमा' उपन्यास में नागार्जुन ने इस स्थिति का वर्णन किया है-"दामों ठाकुर भूत झाड़ने के बहाने बांस सुखिया को अकेली छोड़ने को कहता है ... छोटा मालिक बलचनमा की बहन रेवनी पर बलात्कार करने की कोशिश करता है।" [12]

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 2, Issue 6, November 2015 |

'गोदान' उपन्यास में होरी के अंतिम क्रियाक्रम की स्थिति हीरा ने रोते हुए कहा- "भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले। धनिया यक्ष की भांति उठी, आज तो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और अपने पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली- महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।"

भारतीय किसान बिरादरी से बंधा होता है। बिरादरी का भय पिशाच की भांति उसके सिर सवार रहता है। बिरादरी से अलग होकर जीवन जीने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता। शादी-ब्याह, मुंडन-छेन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में होते हैं। अतः कृषक बिरादरी से बाहर नहीं जा सकता। बलचनमा को भी मुसलमानों का छुआ खाना खाते समय डर है कि कोई बिरादरी वाला देख लेगा तो नाहक का बखेड़ा हो जाएगा। कृषक समाज में सामाजिक उत्तरदायित्व की इकाई परिवार ही होते हैं। अच्छे तथा बुरे कार्यों का उत्तरदायित्व भी परिवार पर ही रहता है। उत्सवों आदि के निमंत्रण परम्परागत रूप से व्यक्तियों को न दिए जाकर परिवारों को दिए जाते हैं। सभी के सामाजिक कर्त्तव्यों तथा नियमों को पारिवारिक सम्बनधों के अनुरूप समझा जाता है।

'फांस' उपन्यास में दहेज प्रथा की समस्या को देखा जा सकता है- "मुलगे का पिता, मुलगे की पढ़ाई। एक बार नौकरी लगी नहीं की सारा कुछ ठीक हो जाएगा, तुकाराम-डिमाण्ड? मुलगे का पिता- अपनी तो कोई डिमाण्ड नहीं, लेकिन आपका इतना देखना तो फर्ज बनता है कि आपकी मुलगी जहां जाए,[13] सुखी रहे। रेट तो सबको मालूम है- एक हीरो होण्डा, एक लाख नगद।" बलचनमा के राधा बाबू को अपने पुत्रों की शादी में हाथी-घोड़ा आदि दहेज में मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जातिवाद कृषक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। कृषक जीवन में अंधविश्वास, दहेज-प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों को भी देखा जा सकता है। किसानसाधारण जीवन व्यतीत करता है। इसी साधेपन के कारण वह विभिनन परम्पराओं में बंधा हुआ है। [14]

उपसंहार:-

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में किसान-विमर्श के तीन चित्रण प्रमुख रूप से देखे जा सकते हैं। इन चित्रणों में आर्थिक स्तर, सामाजिक स्तर तथा राजनीतिक स्तर तीनों में ही किसान की स्थिति दयनीय है। किसान दिन-रात खेतों में मेहनत करता है। कभी तो प्राकृतिक आपदाएं जैसे- अतिवृष्टि, ओलावृष्टि, अकाल, सूखा इत्यादि उसकी फसलों को नष्ट कर देती हैं, तो कभी किसान की पकी पकाई फसल को साहूकार ले जाते हैं।[15] किसान की इसी स्थिति के कारण निरंतर किसान आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं। जिनका वर्णन संजीव ने अपने उपन्यास 'फॉस' में किया है। पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में एक तरफ सरकार मुख्यमंत्री के कार्यक्रम के लिए उत्सव मनाया जा रहा है। वही दूसरी तरफ फसल न हो पाने के कारण किसान काल के मुंह में जा रहा है। जानकारी देना व लेना मानवीय स्वभाव का विशेष अंग है, मनुष्य की जिज्ञासु प्रकृति उसे मिलों दूर घटना के विषय में जानने को बाध्य करती है।

निष्कर्ष :-

पूंजीवाद के आगमन, उसके आगमन के साथ हमारी नैतिकता में परिवर्तन और मूल्यों में गिरावट को प्रेमचंद बड़ी शिद्दत से महसूस कर रहे थे। प्रेमचंद महाजनी सभ्यता के कट्टर विरोधी थे और इस सभ्यता से उत्पन्न समस्याओं के कारण चिंतित भी थे। उनका मुख्य विषय था समाज में व्याप्त आर्थिक शोषण का पर्दाफाश करना और गांव में रहने वाले किसानों की स्थिति को आम जनता तक पहुंचाकर उसमें मूलभूत बदलाव करना । इसी कारण प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में किसानों की स्थिति पर, भारतीय गांवों की स्थिति पर और कृषि व्यवस्था पर पूरी निष्ठा से चित्रण किया। भारतीय किसान अर्थव्यवस्था की रीढ़ माने जाते हैं। इनके वगैर खुशहाल देश की उम्मीद करना बेमानी होगी। जब तक किसान खुश नहीं होंगे तब तक भारतीय व्यवस्था पूरी तरह से मजबूत नहीं होगी। भारत की चतुर्मुखी विकास के लिए भारतीय किसानों का उद्धार होना जरूरी है। [16]

संदर्भ:-

ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 2.120 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 2, Issue 6, November 2015 |

1. प्रेमचन्द, गोदान, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2015, पृ. 23
2. नागार्जुन, बलचनामा, पृ. 3
3. प्रेमाश्रम, प्रकाशन संस्थान, पृ. 85 3.
4. गोदान, प्रकाशन संस्थान, संस्करण 2015, पृ. 16.
5. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 108-109
6. सुनील चतुर्वेदी, कालीचाट, अंतिका प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ.16
7. राजकुमार राकेश, कंदील, संस्करण 2015, पृ. 15
8. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, संस्करण 2016, पृ. 8
9. नागार्जुन, बलचनामा, पृ. 6-7
10. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, पृ. 96
11. वही, पृ. 41
12. नागार्जुन, बलचनमा, पृ. 9
13. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 107
14. प्रेमचन्द, गोदान, प्रकाशन संस्थान, पृ. 328 66
15. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 250
16. सुनील चतुर्वेदी, कालीचाट, अंतिक प्रकाशन, संस्करण 2015, पृ. 142